प्राचीन जैन-साहित्य के संदर्भ में भारतीय शासन-व्यवस्था

(डॉ. तेजसिंह गौड़)

जैन साहित्य का अनुशीलन करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि प्रारम्भ में कुलकरों की व्यवस्था थी । मानव अपनी समस्त आवश्यकताओंकी पूर्ति कल्पवृक्षों के माध्यम से कर लिया करता था । कुल की व्यवस्था व संचालन करने वाला सर्वे-सर्वा, जो पूर्ण प्रतिमा सम्पन्न होता था, उसे 'कुलकर' कहा गया है ।[१] कुलकर को व्यवस्था बनाये रखने के लिए अपराधी को दण्डित करने का भी अधिकार था ।

कुलकर विमलवाहन शासक के समय में कुछ समय तक अपराधों में न्यूनता रही, पर कल्पवृक्षों के क्षीणप्राय होने से युगलों का उन पर ममत्व बढ़ने लगा । एक युगलिया जिस कल्पवृक्ष का आश्रय लेता था उसीका आश्रय अन्य युगल भी ले लेता था, इससे कलह व वैमनस्य की भावनाएँ तीव्रतर होने लगी । स्थिति का सिंहावलोकन करते हुए नीतिज्ञ कुलकर विमलवाहन ने कल्पवृक्षों का विभाजन कर दिया ।[२]

दण्डनीति :- आवश्यकता आविष्कार की जननी है, कहावत के अनुसार जब समाज में अव्यवस्था फैलने लगी । जनजीवन अस्तव्यस्त हो उठा, तब अपराधी मनोवृत्ति पर नियंत्रण करने के लिए उपाय खोजे जाने लगे और उसी के परिणामस्वरूप दण्डनीति का प्रादुर्भाव हुआ ।[३] कहना अनुचित न होगा कि इससे पूर्व किसी प्रकार की कोई दण्डनीति नहीं थी, क्योंकि उसकी आवश्यकता ही प्रतीत नहीं हुई । जैन साहित्य के अनुसार सर्वप्रथम हाकार, माकार और 'धिक्कार' नीति का प्रचलन हुआ । जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :-

हाकार नीति :- इस नीति का प्रचलन कुलकर विमलवाहन के समय हुआ । इस नीतिके अनुसार अपराधी को खेदपूर्वक प्रताड़ित किया जाता था - "हा ! अर्थात् तुमने यह क्या किया ?" देखने में यह केवल शब्द-प्रताड़ना है किंतु यह दण्ड भी उस समय का एक महान दण्ड था । इस 'हा' शब्द से प्रताड़ित होने मात्र से ही अपराधी पानी-पानी हो जाता था । इसका कारण यह था कि उस समय का मनुष्य वर्तमान मनुष्य की भांति उच्छृंखल एवं अमर्यादित नहीं था । वह तो स्वभाव से लज्जाशील और संकोची था । इसलिये इस 'हा' वाले दण्ड को भी वह ऐसा समझता था मानो उसे मृत्युदण्ड मिल रहा हो ।[४] यह नीति कुलकर चक्षुष्मान के समयतक बराबर चलती रही ।

माकार नीति :- कोई एक प्रकार की नीति एकाई नहीं होती है । देशकाल - परिस्थिति के अनुसार नीति में परिवर्तन भी होता है । यही बात प्रथम 'हाकार' नीति के लिए सत्य प्रमाणित हुई । 'हाकार' नीति जब विफल होने लगी तो अपराधों में और वृद्धि होने लगी, तब किसी नवीन नीति की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी । तब चक्षुष्मान के तृतीय पुत्र कुलकर यशस्वी ने अपराध भेद का अर्थात् छोटे बड़े अपराध के मानसे अलग अलग नीति का प्रयोग प्रारम्भ किया ।[५] कहने का तात्पर्य यह कि अपराधों का वर्गीकरण किया । छोटे अपराधों के लिए तो 'हाकार नीति' का ही प्रयोग रखा तथा बड़े अपराधों के लिए 'माकार नीति' का आरम्भ किया । यदि इससे भी अधिक कोई करता तो उस अपराधी को दोनों प्रकार की नीतियों से दण्डित करना प्रारम्भ किया ।[६] 'माकार' का अर्थ था - 'मत करो ।' यह एक निषेधात्मक महान दण्ड था । इन दोनों प्रकार की दण्डनीतियों से व्यवस्थापन कार्य यशस्वी के पुत्र 'अमिचचन्द्र तक चलता रहा ।

धिक्कार नीति :- समाज में अभाव बढ़ता जा रहा था । उसके साथ ही असंतोष भी बढ़ रहा था जिसके परिणामस्वरूप उच्छृंखलता दुष्टता का भी एक प्रकार से विकास ही हो रहा था । ऐसी स्थिति में हाकार और माकार नीति कब तक व्यवस्था चला सकती थी । एक दिन माकार नीति भी विफल होती दिखाई देने लगी और अब इसके स्थान पर किसी नई नीति की आवश्यकता प्रतीत होने लगी । तब माकार नीति की असफलता से 'धिक्कारनीति' का जन्म हुआ ।[७] यह नीति कुलकर प्रसेनजित से लेकर अंतिम कुलकर नाभितक चलती रही । इस 'धिक्कार' नीति के अनुसार अपराधी को इतना कहा जाता था - 'धिक् अर्थात् तुझे धिक्कार है, जो ऐसा कार्य किया ।'

इस प्रकार यदि अपराधों के मान से वर्गीकरण किया जाये तो वह इस प्रकार होगा - जघन्य अपराध वालों के लिए 'खेद' मध्यम अपराध वालों के लिए' 'निषेध' और उत्कृष्ट अपराध वालों के लिए 'तिरस्कार' सूचक दण्ड मृत्युदण्ड से भी अधिक प्रभावशाली थे ।[८]

कुलनाभि तक अपराधवृत्ति का कोई विशेष विकास नहीं हुआ था, क्योंकि उस युग का मानव, स्वभाव से सरल और हृदय से कोमल था ।[९]

प्रथम राजा :- अंतिम कुलकर नाभि के समय में ही जब उनके द्वारा अपराध निरोध के लिए निर्धारित की गई धिक्कारनीति का

यहाँ न अति करना कभी, किसी तरह इन्सान ।
जयन्तसेन कर के अति, बना मनुज शैतान ॥

---

[१] स्थानांग सूत्र वृत्ति ७६०/५१०/१

[२] ऋषभदेव : एक परीशिलन, पृ. १२१

[३] स्थानांग वृत्ति प. ३९९-१

[४] जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति-काळाधिकार, ७९

[५] स्थानांग वृत्ति पृ. ३९९

[६] त्रिषष्टि शलाका १/२/१७६-१७९

[७] स्थानांग वृत्ति प. ३९९ धिगधिक्षेपार्थ एव तस्य करणं उच्चारणधिक्कारः ।

[८] ऋषभदेव एक परिशीलन पृ. १२३

[९] जम्बुद्वीप प्रज्ञप्ति संस्कार सूत्रे १४

उल्लंघन होने लगा और अपराध निवारण में उनकी नीति प्रभावहीन सिद्ध हुई, तब युगलिक लोग घबराकर ऋषभदेव के पास आए और उन्हें वस्तुस्थिति का परिचय कराते हुए सहयोग की प्रार्थना की ।

ऋषभदेव ने कहा - "जनता में अपराधी मनोवृत्ति नहीं फैले और मर्यादा का यथोचित पालन हो इसके लिए दण्ड व्यवस्था होती है, जिसका संचालन 'राजा' किया करता है और वही समय समय पर दण्डनीति में सुधार करता रहता है । राजा का राज्य पद पर अभिषेक किया जाता है । यह सुनकर युगलियों ने कहा - "महाराज ! आप ही हमारे राजा बन जाइये ।"

इसपर ऋषभदेव ने नाभि के सम्मानार्थ कहा - "जाओ इसके लिए तुम सब महाराज नाभि से निवेदन करो ।"

युगलियों ने नाभि के पास जाकर निवेदन किया । समय के जानकार नाभि ने युगलियों की नम्र प्रार्थना सुनकर कहा - "मैं तो वृद्ध हूँ, अतः तुम सब ऋषभदेव को राज्यपद देकर उन्हें राजा बनालो ।"

नाभि की आज्ञा पाकर युगलिकजन पद्मसरोवर पर गए और कमल के पत्तों में पानी लेकर आए । उसी समय आसन चलायमान होने से देवेन्द्र भी वहां आगए । उन्होंने सविधि सम्मानपूर्वक देवगण के साथ ऋषभदेव का राज्याभिषेक किया और उन्हें राजायोग्य अलंकारों से विभूषित कर दिया ।

युगलियों ने सोचा कि अलंकार विभूषित ऋषभ के शरीर पर पानी कैसे डाला जाय ? ऐसा विचारकर उन्होंने ऋषभदेव के चरणों पर पानी डालकर अभिषेक किया और उन्हें अपना राजा स्वीकार किया ।

इस प्रकार ऋषभदेव उस समय के प्रथम राजा घोषित हुए । इन्होंने पहले से चली आ रही कुलकर व्यवस्था समाप्तकर नवीन राज्यव्यवस्था का निर्माण किया ।

युगलियों के इस विनीत स्वभाव को देखकर शक्रेन्दने उस स्थान पर विनीता नगरी के नाम से उनकी वसति स्थापित कर[1] दी । उस नगरी का दूसरा नाम अयोध्या भी कहा जाता है ।

शासन-व्यवस्था :-

राज्याभिषेक के उपरांत श्री ऋषभदेव ने राज्य की सुव्यवस्था के लिए आरक्षक दल की स्थापना की, जिसमें अधिकारी 'उग्र' कहलाए । 'भोग' नाम के अधिकारियों का मंत्री-मंडल बनाया । राजा के परामर्शदाता 'राजन्य' के नाम से विख्यात हुए तथा राज्य कर्मचारी 'क्षत्रिय' के नाम से जाने जाने लगे ।[1]

दुष्ट लोगों के दमन के लिए तथा प्रजा और राज्य के संरक्षण के लिए उन्होंने चार प्रकार की सेना व सेनापतियों की भी व्यवस्था की ।[2] उनके चतुर्विध सैन्य संगठन में गज, अश्व, रथ एवं पैदल सैनिक सम्मिलित किए गए । अपराध-निरोध तथा अपराधियों की खोज के लिए साम, दाम, दण्ड और भेद की नीति का भी प्रचलन किया ।[3]

दण्डनीति :- शासन की सुव्यवस्था के लिए दण्ड परम आवश्यक है । दण्डनीति सर्व अनीति रूपी सर्पों को वश में करने के लिए विषविद्यावत् है । अपराधी को उचित दण्ड न दिया जाय तो अपराधों की संख्या निरन्तर बढ़ती जायगी एवं बुराइयों से राष्ट्र की रक्षा नहीं हो सकेगी । अतः श्री ऋषभदेव ने अपने समय में चार प्रकार की दण्डनीति अपनाई । (१) परिभाष (२) मण्डलबंध (३) चारक और (४) छबिच्छेद ।

परिभाष :- कुछ समय के लिए अपराधी व्यक्ति को आक्रोश पूर्ण शब्दों में नजरबंद रहने का दण्ड ।

मण्डल बंध :- सीमित क्षेत्र में रहने का दण्ड देना ।

चारक :- बन्दीगृह में रहने का दण्ड देना ।

छविच्छेद :- करादि अंगोपांगों के छेदन का दण्ड देना ।

ये चार नीतियां कब चलीं, इसमें विद्वानों के मत अलग-अलग हैं । कुछ विज्ञों का मंतव्य है कि प्रथम दो नीतियां श्री ऋषभदेव के समय चली और दो भरत के समय । आचार्य अभयदेव के मंतव्यानुसार ये चारों नीतियां भरत के समय चली । आचार्य भद्रबाहु और आचार्य मलयगिरि के अभिमतानुसार बन्ध (बेड़ी का प्रयोग) और घात (दण्डे का प्रयोग) ऋषभनाथ के समय आरम्भ हो गए थे और मृत्यु दण्ड का आरम्भ भरत के समय हुआ । जिनसेनाचार्य के अनुसार वध-बन्धनादि शारीरिक दण्ड भरत के समय चले । उस समय तीन प्रकार के दण्ड प्रचलित थे जो अपराध के अनुसार दिये जाते थे -

(१) अर्थहरण दण्ड (२) शारीरिक क्लेशरूप दण्ड (३) प्राणहरण रूप दण्ड ।[4]

उपर्युक्त विवरण कुलकरों तथा प्रथम राजा ऋषभदेव के समय की

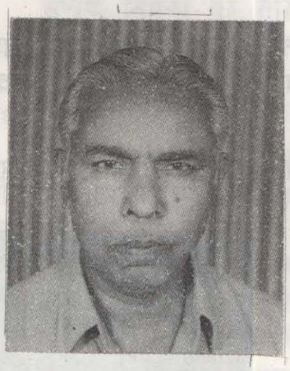

डॉ. तेजसिंह गौड़

एक संस्कृति पर सात पुस्तकों का प्रकाशन । कई पत्रिकाओं के अतिरिक्त महावीर स्मारिका, पांच स्मृति या अभिनंदन ग्रंथों, जैनविद्या पर लिखित उपन्यासों एवं जीवन-चरित्र पर ग्रंथों का सम्पादन । शोध प्रबंध का विषय - 'प्राचीन तथा मध्यकालीन मालवा में जैन धर्म : एक अध्ययन'

सम्प्रति - व्याख्याता, शासकीय उच्चतर माध्यमिक विधालय, उन्हेल. (जि. उज्जैन, म.प्र.)

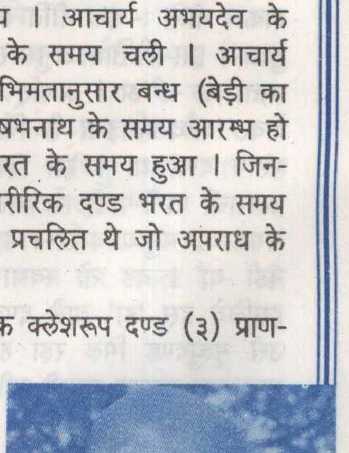

---

[1] जैनधर्म का मौलिक इतिहास, प्रथम भाग. पृ. १९-२०

[1] त्रिषष्टि १/२/९७४-९७६, आव. निर्यु. गा. १९८

[2] वही १/२/९२५-९३२

[3] त्रिषष्टि १/२/९५६

[4] ऋषभदेवः एक परीशीलन, पृ. १४५-४६

व्यवस्था प्रतिपादित करता है । समय के प्रवाह के साथ व्यवस्था में भी परिवर्तन हुआ और उसका विकास भी हुआ । जैन- साहित्य में आगे शासन व्यवस्था विषयक जो विवरण मिलता है, उसका संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है ।

राजा का पद एवं उत्तराधिकार :- प्रजा-पालन के लिये राजा का होना अत्यन्त आवश्यक माना गया । राजा का सर्वगुण सम्पन्न और व्यसन तथा विकार रहित होना आवश्यक था ।[१] राजा का राजनीति में निपुण और धर्म के प्रति श्रद्धावान होना भी जरूरी था । उसके दोनों कुल पवित्र होना चाहिए । राजा का पद वंश परम्परागत होता था ।[२] राजा के एक पुत्र होने की स्थिति में वही उत्तराधिकारी होता था । एक से अधिक पुत्र होने पर, उनकी परीक्षा आयोजित की जाती थी और जो परीक्षा में सफल होता वही युवराज बनता था ।[३] राजा के स्वर्गवास के पश्चात् जिस राजकुमार को सिंहासन का अधिकार मिलता यदि वह दीक्षा ले लेता तो उससे छोटा राजकुमार राजा बन जाता । यदि राजा और युवराज दोनों ही राज्य त्यागकर दीक्षा ले लेते तो बहन के पुत्र को राज्य का भार सौंप दिया जाता ।[४] एक परम्परा यह भी थी कि यदि राजा का कोई भी उत्तराधिकारी नहीं होता तो हाथी या घोड़ा छोड़ दिया जाता था । वह जिसका भी अभिषेक करता उसी को राजा बना दिया जाता ।[५]

राज्य प्राप्ति के लिए षड्यंत्र :- राजकुमारों में राज्य प्राप्तकरने की तीव्र उत्कंठा रहती थी इसलिए राजा उनसे शंकित और भयभीत रहता था । और उनपर कठोर नियंत्रण रखता था । तथापि कितने ही महत्त्वाकांक्षी राजकुमार मौका मिलने पर अपने कुचक्रों में सफल हो जाते थे । वे राजा का वध कर स्वयं राजा बन जाते थे । राजा श्रेणिक को कूणिक ने अपने सौतेले भाई की सहायता से पकड़ कर जेल में डाल दिया और स्वयं राजसिंहासन पर बैठ गया । उसके बाद अपनी माता के कहने से परशु लेकर बेड़ियां काटने चला, किंतु राजा ने समझा कि कूणिक उसे मारने के लिए आ रहा है, एतदर्थ कूणिक के आने से पूर्व ही विष खाकर उसने अपना प्राणांत कर लिया ।[६]

राज्याभिषेक :- राज्याभिषेक के सम्बन्ध में ऊपर संकेत किया जा चुका है । इस विषयकी जो जानकारी है उसके अनुसार राजा का अभिषेक समारोह अत्यंत उल्लास के क्षणों में मनाया जाता था । जब मेघकुमार ने दीक्षा का निश्चय किया, तब माता-पिता के अत्यधिक आग्रह पर वे एकदिन के लिए राजसम्पदा का उपयोग करने के लिए प्रस्तुत हुए । अनेक गणनायक, दण्डनायक, प्रभृति से परिवृत्त हो उन्हें सोने, चांदी, मणि, मुक्ता आदि से आठआठ सौ कलशों से स्नान कराया । मृत्तिका, पुष्प, गंध, माल्य, औषधि और सरसों आदि उनके मस्तक पर फैंकी गयी, तथा दुंदुमि बाजों और जय-जयकार का घोष सुनाई देने लगा । राज्याभिषेक हो जाने के पश्चात् सभी प्रजा राजा को बधाई देती है । चम्पा, मथुरा, वाराणसी, श्रावस्ती, साकेत, कांपिल्य, कौशाबी मिथिला, हस्तिनापुर और राजगृह उस समय इन दस नगरियों को अभिषेक राजधानी कहा है ।

युवराज की योग्यता :- युवराज पांच विशिष्ट पुरुषों में से एक होता था । राजा के पश्चात् युवराज का क्रम था फिर अमात्य, श्रेष्ठि और पुरोहित होते थे । राजा की मृत्यु के पश्चात्, युवराज ही राजा बनता था । उसकी योग्यता के सम्बन्ध में बताया गया है-

(१) युवराज अणिमा, महिमा आदि आठ प्रकार के ऐश्वर्य से युक्त होता था ।

(२) वह बहत्तर कलाओं, अठारह देशी भाषाओं, गीत, नृत्य, तथा हस्तियुद्ध, अश्वयुद्ध, मुष्टियुद्ध, बाहुयुद्ध, लतायुद्ध, रथयुद्ध, धनुर्वेद आदि में भी निपुण होता था ।[८] उसके कर्तव्यों की ओर संकेत करते हुए बताया गया है कि आवश्यक कार्यों से निपटकर वह सभा मण्डल में पहुंचकर राजकाज का अवलोकन करता था । पड़ोसी राजा द्वारा उपद्रव करने की स्थिति में उसे शांत करने का कर्तव्य भी युवराज का था ।[९]

अमात्य का पद बड़ा महत्त्वपूर्ण होता था । युवराज के पश्चात् सबसे बड़ा पद भी यही था । जैन साहित्य में अमात्य/मंत्री के पद विषयक अनेक महत्त्वपूर्ण दृष्टांत भी मिलते हैं । विस्तारभय से यहां विशेष विवरण न देकर यह कहना ही पर्याप्त है कि अमात्य साम, दाम, दण्ड और भेद में कुशल, नीतिशासन में चतुरका, अर्थशासन में पारंगत, औत्पात्तिकी, वैनयिकी, कार्मिकी और पारिणामिकी इन चार प्रभावी बुद्धियों में निष्णात होता था । राजा स्वयं उससे महत्त्वपूर्ण विषयों में परामर्श लिया करता था । वह विलक्षण प्रतिभा का धनी होता था । सारे गुप्त रहस्यों का ज्ञाता होने के साथ शत्रु को पराजित कर राज्य की रक्षा करता था ।[१०]

अन्य राज्याधिकारी :- श्रेष्ठि, नगर सेठ अठारह प्रकार की प्रजा का रक्षक कहलाता था । वह राजा द्वारा मान्य होता था उसका मस्तक देवमुद्रा से व सुवर्णपिट्ट से सुशोभित रहता था । इनके अतिरिक्त ग्राम महत्तर, राष्ट्र महत्तर, गणनायक, दण्डनायक, तलवर, कोहपाल, कौटुम्बिक, गणक, वैद्य इभ्य, ईश्वर, सेनापति सार्थवाह, संधिपाह, पीठमर्द, महामात्र, यानशालिक, विदूषक, दूत, चेट, वार्तानिवेदक, किंकर, कर्मकर असिग्राही, धनुग्राही, कोतग्राही, छत्रग्राही, चामरग्राही, वीणाग्राही, भाण्ड, अभ्यंग लगानेवाले, उबटन मलनेवाले, स्नान कराने वाले, वेशभूषा से शोभित करने वाले, पैर को दबाने वाले, आदि अनेक अधिकारी, कर्मचारी और सेवक राजा की सेवामें रहते थे ।[११]

कर व्यवस्था :- राज्य की आय का प्रमुख स्रोत कर होता है । उन दिनों अठारह प्रकार के करों के प्रचलन का उल्लेख मिलता है ।[१२] सुंकपाल नामय अधिकारी कर वसूल

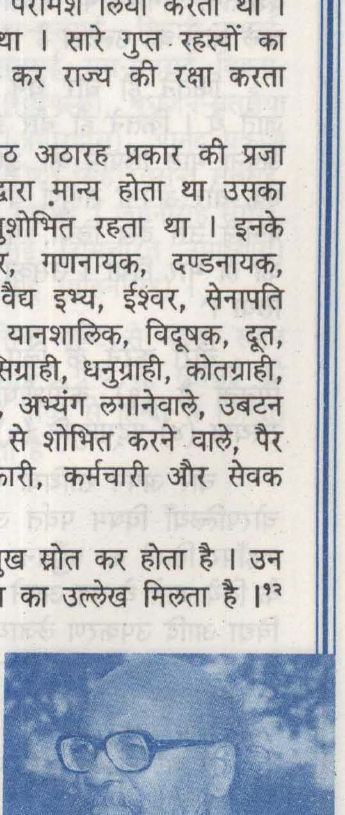

---

[१] निशीशभाष्य १५/४७९९

[२] व्यवहार भाष्य १ । पृ. १२८

[३] व्यवहार भाष्य ४।२०९ और ४

[४] उत्तराध्ययन टीका, १० प. १५३

[५] वही ३, पृ. ६३

[६] भगवान महावीर : एक अनु. पृ. ७८

[७] वही, पृष्ठ. ७८-७९

[८] औपपातिक सूत्र ४० पृ. २४८

[९] व्यवहार भाष्य, १पृ. १३१

[१०] भगवान महावीर : एक अनु. पृ. ८०

[११] भगवान महावीर :
एक अनुशीलन पृ. ८०

[१२] आवश्यक निर्युक्ति

भूल कबूल करे नहीं, व्यर्थ करे आलाप ।
जयन्तसेन उसे मिले, जीवन में संताप ॥

करने का कार्य करता था ।[1] सामान्यतः उपज का दसवां भाग कर रूप में लिया जाता था किंतु विशिष्ट कारणों से इसमें अंतर भी आ जाता था । व्यापारिक वस्तुओं पर भी कर लगाया जाता था । व्यापारी उन दिनों भी कर चोरी किया करते थे, वे अपना माल छिपा देते थे ।[2] जो व्यापारी अच्छी किस्म का माल छिपा लेता था, पता चलने पर राजा उस व्यापारी का सम्पूर्ण माल जब्त कर लेता था । शुल्क वसूल करने में कठोरता बरती जाती थी । इससे जनता त्रस्त रहती थी । पुत्र जन्म, राज्याभिषेक जैसे अवसरों पर जनता को कर मुक्त भी किया जाता था ।[3]

अपराध :- उस समय अपराधों में चौर्य-कर्म प्रमुख था । चोरों के अनेक वर्ग इधर उधर कार्यरत रहते थे । लोगों को चोरों का आतंक हमेशा बना रहता था । चोरों मे अनेक प्रकार थे । यथा -

(१) आमोष - धनमाल को लूटन वाले ।
(२) लोभहार - धन के साथ ही प्राणों को लूटने वाले ।
(३) ग्रन्थि भेदक - ग्रंथि भेद करने वाले ।
(४) तस्कर - प्रतिदिन चोरी करने वाले ।
(५) कण्णुहा - कन्याओं का अपहरण करने वाले ।

लोभहार अत्यंत क्रूर होते थे । वे अपने आपको बचाने के लिये मानवों की हत्या कर देते थे । ग्रंथि भेदक के पास विशेष प्रकार की कैंचियां होती थी जो गांठों को काटकर धन का अपहरण करते थे । निशीथ भाष्य में आक्रान्त, प्राकृतिक, ग्रामस्तेन, देशस्तेन, अनारस्तेन, अध्वानस्तेन और खेतों में खनकर चोरी करने वाले चोरों का उल्लेख है ।[4]

कितने ही चोर धन की तरह स्त्री, पुरुषों को भी चुरा ले जाते थे । कितने ही चोर इतने निष्ठुर होते थे कि वे चुराया हुआ अपना माल छिपाने को अपने कुटुम्बी जनों को भी मार देते थे। एक चोर अपना सम्पूर्ण धन कुए में रखता था । एक दिन उसकी पत्नीने उसे देख लिया, भेद खुलने के भय से उसने अपनी पत्नी को ही मार दिया । उसका पुत्र चिल्लाया और लोगों ने उसे पकड़ लिया ।[5]

चोरी करने के लिए छः प्रकार से सेंध लगाने का उल्लेख मिलता है (१) कपिशीषकार (२) कलशावृत्ति (३) नन्दावर्त संस्थान (४) पद्माकृति (५) पुरुषाकृति और (६) श्री वत्ससंस्थान।[6]

चोर अपने साथियों के साथ चोरपल्लियों में रहा करते थे । चोरपल्लियाँ विषम पर्वत और गहन अटवी में हुआ करती थी । जहाँपर किसी का पहुँचना संभव नहीं था ।[7] जब चोर चोरी करने के लिये जाते थे तब अपने साथ पानी की मशाल और तालोद्घाटिनी विद्या आदि उपकरण लेजाया करते थे ।[8]

दण्डविधान :- उपाचार्य श्री देवेन्द्रमुनिजीशास्त्री ने विपाकसूत्र, प्रश्नव्याकरण, अंगुतर निकाय और जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज के आधार पर लिखा है कि चोरी करने पर भयंकर दण्ड दिया जाता था । उस समय दण्ड-व्यवस्था कठोर थी । राजा चोरों को लोहे के कुंभ में बन्द कर देते थे, उनके हाथ कटवा देते थे । सूली पर चढ़ा देते थे । कभी अपराधी की कोड़ों से पूजा करते । चोरों को वस्त्रयुगल पहनाकर, गले में कनेर के फूलों की माला डालते और उनके शरीर को तेल से सिक्त कर भस्म लगाते और चौराहों पर घुमाते व लातों, घूँसों, डंडों और कोड़ों से पीटते । ओंठ, नाक और कान को काट देते, रक्त से मुँह को लिप्त कर के फूटा ढोल बजाते हुए अपराधों की उद्घोषणा करते ।

तस्करों की तरह परदारगमन करने वालों को भी सिर मुंड़ना, तर्जन, ताड़न, लिंगच्छेदन, निर्वासन और मृत्युदण्ड दिये जाते थे । पुरुषों की भांति स्त्रियां भी दण्ड की भागी होती थी, किन्तु गर्भवती स्त्रियों को क्षमा कर दिया जाता था । हत्या करने वाले को अर्थदण्ड और मृत्युदण्ड दोनों दिये जाते थे ।

न्याय व्यवस्था :-अपराधियों को दण्डित करने के लिये योग्य और ईमानदार न्यायाधीश होते थे जो रिश्वत न लेकर निष्पक्ष न्यायप्रदान करने का कार्य करते थे । साधारण अपराध के लिये भी कठोर दण्ड व्यवस्था का प्रावधान था ।

श्रावकों को झूठी गवाही न देने और झूठे दस्तावेज प्रस्तुत न करने का नियम दिलाया जाता था । इससे ऐसा आभास होता है कि उन दिनों झूठी गवाही भी दी जाती थी । अपराधी को राजकुल में उपस्थित किया जाता था । ऐसा उल्लेख मनुस्मृति में पाया जाता है ।

उन दिनों राजा सर्वेसर्वा होता था । अर्थात् वह स्वेच्छाचारी होता था । एक ओर वह प्रजाकी रक्षा करता था तो दूसरी ओर जनता को कष्ट भी देता था । राजा की आज्ञा का उल्लंघन करने वाला महान् अपराधी माना जाता था । इसके लिये भी दण्ड व्यवस्था थी । विस्तारभय से यहां अब अधिक न लिखकर केवल संकेत मात्र किया जा रहा है ।

जैन साहित्य में कारागृहों का भी विवरण मिलता है । कारागृहो में कैदियों को किस प्रकार रखा जाता था, उनके साथ कैसा व्यवहार किया जाता था, आदि उल्लेख भी है । उन दिनों प्रत्येक राज्य की अपनी गुप्तचर व्यवस्था थी । गुप्तचर होने की आशंका में साधुओं को भी पकड़ लिया जाता था ।

युद्ध, एवं चतुरंगिणी सेना, युद्धनीति और अस्त्र-शस्त्र आदि का भी विस्तार से वर्णन मिलता है । यदि इन सबका व्यवस्थित रूप से अध्ययन कर प्रस्तुत किया जाये तो एक अच्छी पुस्तक तैयार हो सकती है । और यह स्पष्ट हो सकता है कि जैन साहित्य में केवल धर्म और दर्शन विषयक ही नहीं, अन्य विषयोंसे सम्बन्धित विवरण भी पर्याप्तरूप से उपलब्ध होता है । जैन विद्या के मनीषियों को इस ओर भी ध्यान देना चाहिए ।

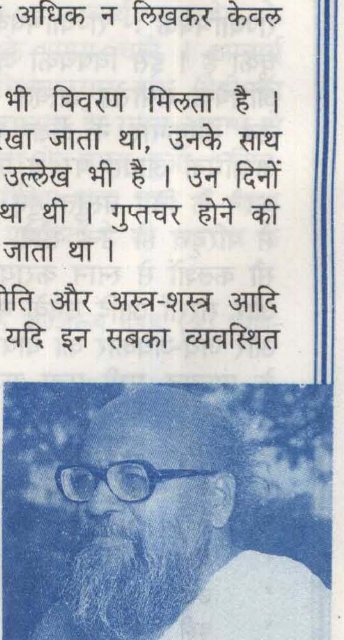

---

[1] उत्तराध्ययन

[2] वही, ३१ पृ. ६४

[3] भगवान महावीर : एक अनु. पृ. ८१

[4] वही, पृ. ८२

[5] भगवान महावीर : एक अनु. पृ. ८२

[6] उत्तराध्ययन बृहद्वृत्ति पृ. २१५

[7] भगवान महावीर : एक अनु. पृ. ८३

[8] ज्ञाताधर्म कला १८/१ २१०